वेदान्त-उपनिषद् के निर्देशों का पालन करना प्रायः असम्भव सा हो गया है। वेदों के तात्पर्य की सिद्धि के लिए अत्यधिक समय, शक्ति, ज्ञान तथा साधन अपेक्षित हैं। इस युग में ये सब प्रायः असाध्य हैं। ऐसे में पतितपावनावतार श्री गौरसुन्दर चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित हरिनाम-संकीर्तन से वैदिक संस्कृति के परम लक्ष्य की सिद्धि सर्व सुलभ हो सकती है। महान् वैदिक विद्वान् प्रकाशानन्द सरस्वती ने श्री गौरसुन्दर से जिज्ञासा की थी कि वे वेदान्त का स्वाध्याय न करके भावुक की भाँति भगवन्नाम कीर्तन ही क्यों करते हैं। उत्तरस्वरूप श्रीमन्महाप्रभु ने सविनय निवेदन किया कि उनके गुरुदेव ने महामूर्ख जानकर केवल कृष्णनाम कीर्तन करने का आदेश दिया था। उन्होंने ऐसा ही किया और परिणाम में भावोन्मत्त हो गये। वर्तमान कलिकाल की अधिकांश जनता पर्याप्त शिक्षा-प्राप्त न होने से मूढ़ है, इसलिए वेदान्तदर्शन को समझने के योग्य नहीं है। परन्तु कृष्णनाम के निरपराध कीर्तन से वेदान्त का परम प्रयोजन सुगमता से सिद्ध हो सकता है। वेदान्त वैदिक ज्ञान की पराकाष्ठा है और वेदान्तदर्शन के प्रणेता तथा ज्ञाता भगवान् श्रीकृष्ण हैं। अतएव जो कृष्णनाम के संकीर्तन में आनन्द का आस्वादन करता है वही महात्मा सर्वोच्च वेदान्ती है। यह सम्पूर्ण वैदिक अध्यात्मविद्या का परम लक्ष्य है।

15.2

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।४७।।

कर्मणि=स्वधर्मरूप कर्म करने में; **एव**=ही; **अधिकारः**=अधिकार है; **ते**=तेरा; **मा**=नहीं; **फलेषु**=कर्मफल में; **कदाचन**=कदापि; **मा**=नहीं; **कर्मफल**=कर्मफल का; **हेतुः**=कारण; **भूः**=हो; **मा**=नहीं; **ते**=तेरी; **संगः**=आसक्ति; **अस्तु**=हो; **अकर्मणि**=कर्म न करने में।

अनुवाद

तेरा अधिकार स्वधर्मरूप कर्म करने में ही है, कर्मफल में नहीं। तू कर्मफल का हेतु कभी न हो और कर्तव्य न करने में भी तेरी आसक्ति न हो।।४७।।

तात्पर्य

यहाँ स्वधर्मरूप कर्म, विकर्म तथा अकर्म, ये तीन तत्त्व विचारणीय हैं। स्वधर्म उन कर्मों को कहते हैं, जो प्रकृतिस्थ अवस्था में शास्त्र के विधान के अनुसार किये जाते हैं। अनधिकारपूर्वक किया गया स्वेच्छामय कर्म 'विकर्म' कहलाता है तथा स्वधर्माचरण में प्रमाद 'अकर्म' है। श्रीभगवान् ने अर्जुन को निष्क्रिय न होकर फलासक्ति के बिना स्वधर्मरूप कर्म करने का परामर्श दिया है। जिसकी कर्मफल में आसक्ति है, वही पुरुष कर्म का हेतु बनकर कर्मानुसार सुख-दुःख भोगता है।

स्वधर्म के तीन उपभेद हैं: नित्य, आपात एवं सकाम कर्म। नित्यकर्म शास्त्र के निर्देशानुसार निस्पृह भाव से किये जाते हैं। अनिवार्य होने से ये नैमित्तिक कर्म सात्त्विक हैं। सकामकर्मों से बन्धन होता है; इसलिए ये कल्याणकारी नहीं हैं।